International Journal of Sanskrit Research 2020; 6(5): 270-272

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2020; 6(5): 270-272
© 2020 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 14-07-2020
Accepted: 23-08-2020

डॉ. उमा शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर, नानक चन्द ऐंग्लो संस्कृत कॉलेज़, मेरठ, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ. उमा शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर, नानक चन्द ऐंग्लो संस्कृत कॉलेज़, मेरठ, उत्तर प्रदेश, भारत

स्वस्थ मानव जीवन हेतु यज्ञों की भूमिका

डॉ. उमा शर्मा

DOI: https://doi.org/10.22271/23947519.2020.v6.i5e.1601

प्रस्तावना

विधाता की विविधप्रकारीय सृष्टि में मानव–सृष्टि उत्तम है। यतोहि उसकी जीवन–शैली, उसके क्रिया–कलाप अन्य जीव–जन्तुओं से उत्कृष्ट होते हैं। जैसा हितोपदेश में कहा भी गया है–

आहारनिद्रा भयमैथुनञ्च,
सामान्यमेतद् पशुभिर्नराणां।
धर्मो हि तेषां कर्मो विशेषः
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।।

'धर्म' 'धृ' धातु से मन् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। इस प्रकार ''धरति लोकान्'' अथवा ''ध्रियते पुण्यात्मभिर्यः स धर्मः।''[1] इत्यादि 'धर्म' शब्द के व्युत्पत्तिलभ्यार्थ हैं। 'महाभारत' के अनुसार– ''धारणाद् धर्मम् इत्याहुधर्मेण विधृताः प्रजाः'' अर्थात् जगत् के धारक तत्त्व ही धर्म है।[2]
भगवान् मनु ने धर्म के दश लक्षण बताये हैं यथा–

''धृतिक्षमादमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।''[3]

उक्त धर्मों के निर्वाह हेतु स्वस्थ शरीर की आवश्यकता होती है। स्वस्थ व्यक्ति ही धृत धर्मों के पालन का सामर्थ्य रखता है। धर्मार्थकाममोक्ष अर्थात् पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति के लिए, अभ्युदय एवं निःश्रेयस् की सिद्धयर्थ शरीर को स्वस्थ रखना हमारा प्रथम कर्त्तव्य है। महाकवि कालिदास ने 'कुमारसंभव' महाकाव्य के पञ्चम सर्ग में कहा है–

''शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्''[4]

वैदिक यज्ञ पुरातन काल से ही उत्तम स्वास्थ्य के महत्त्वपूर्ण साधन माने गये हैं क्योंकि यज्ञों से पर्यावरण संतुलित रहता है तथा प्राकृतिक विसंगतियाँ दूर होती हैं। 'यज्ञ' वस्तुतः ब्रह्माण्ड का केन्द्रबिन्दु एवं उद्भवस्थल भी है।[5]
'यज्ञ' शब्द 'यज्' धातु से 'नङ्' प्रत्यय के संयोग से निष्पन्न होता है।[6] यदि व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'यज्ञ' शब्द का समीक्षण किया जाये तो 'यज्' धातु

''यज् देवपूजासंगतिकरणदानेषु'' के अनुसार इन तीन अर्थों में व्यवहृत होती है।

देवपूजा, संगतिकरण तथा दान। आशय यह है कि यज्ञों में देवों की पूजा होती है, देवतुल्य ऋषि–महर्षियों का संगतिकरण होता है और दान भी होता है। आ० यास्क यज् का अर्थ देवपूजा करते हैं। वे कहते हैं कि यज्ञकर्त्ता विभिन्न प्रकारीय याचना करता है अथवा जिसमें यजुर्वेद के मंत्रों की बहुलता होती है, उसे यज्ञ कहते हैं– यज्ञः कस्मात्? प्रख्यातं यजति कर्मा इति नैरुक्ताः।

''याच् जयो भवतीतिवा यजुभिरुन्नो भवतीति वा,
बहुकृष्णाजिन, इत्यौपमन्यवः यजूंष्येनं नयन्तीति वा।।''[7]

मत्स्यपुराण में यज्ञ के विषय में कहा गया है कि जिस कर्मविशेष में, देवता, हवनीय, द्रव्य, वेदमन्त्र, ऋत्विज और दक्षिणा, इन पाँचों का संयोग हो उसे यज्ञ कहते हैं–

''देवानां द्रव्यहविषां ऋक्सामयजुषां तथा
ऋत्विजां दक्षिणानां च संयोग यज्ञ उच्यते।।''[8]

ऐतरेय ब्राह्मणसम्मत ये पाँच यज्ञ प्रमुख है– अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, पशु तथा सोम यथा– स एषः यज्ञः पंचविधः अग्निहोत्रम्, दर्शपूर्णमासौ, चातुर्मास्यानि, पशुः सोम इति।[9]

'वाजसनेयि संहिता' और शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ को 'वसु' नाम से अभिहित किया गया है।[10] यजुर्वेद भाष्यकार आ० महीधर ने कहा है कि क्योंकि यज्ञ वर्षा के द्वारा सम्पूर्ण विश्व को स्थित रखते हैं। अतः यज्ञ को 'वसु' कहा है।[11] यही अखिल जगत् को प्राण प्रदान करने वाली वायु का 'शोधक' माना गया है।[12] समस्त प्राणियों एवं जड–जगत् को धारण करने के कारण 'विश्वधा' भी कहा जाता है।[13] वेदमन्त्र– रूपिणी वाक् को महाभाष्यकार उव्वट और महीधर ने सम्पूर्ण जगत् को आयु प्रदान करने वाली स्वीकार किया गया है।[14] इन वैशिष्ट्यों के कारण प्राचीनकाल में ऋषियों के अनुसार रोगनिवारक उपायों में यज्ञ भी एक अन्यतम साधन था। उस काल में महामारी आदि संक्रामक रोगों के फैल जाने पर दीर्घकालिक यज्ञों का अनुष्ठान किया जाता था। जिससे प्रजा आरोग्य प्राप्त करती थी। अतएव इन यज्ञों को भैषज्य यज्ञ कहा जाता था। गोपथ–ब्राह्मण के अनुसार ऋतुसन्धियों में अनेक व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। इसी कारण ऋतुपरिवर्तन के समय पर इन यज्ञों का अनुष्ठान किया जाता है इसीलिए इसी ब्राह्मण में इन (चातुर्मास्य) यज्ञों को भैषज्य यज्ञ कहा गया है, क्योंकि वे व्याधिनाशक होते हैं।[15] इन भैषज्य यज्ञों के द्वारा लोक में प्रसिद्ध ज्वरातिसार, देहापीड़ा आदि सामान्य रोग तथा चेचक, हैजा, प्लेग आदि महारोग एक साथ दूर किए जाते थे।[16]

अथर्ववेद में एक मन्त्र में ऐसा उल्लेख किया गया है कि जिस व्यक्ति को औषधिरूप गुग्गुल की सुरभित गन्ध व्याप्त करती है, उसे राजयक्ष्मा एवं संक्रमण आदि व्याधियाँ पीड़ित नहीं करती।[17] अथर्ववेद के ही एक अन्य मन्त्र में बाँध अर्थात् अवरोध के द्वारा अवरूद्ध गति वाले सर्वत्र फैलने वाले जल की भाँति सभी प्राणियों के लिए हितकारी यज्ञाग्नि द्वारा रोगी व्यक्ति के रोग निवारण का संकेत किया गया है।[18]

यज्ञों के द्वारा विभिन्न रोगों के निवारण का उल्लेख चरक संहिता, बृहन्निघण्टु आदि प्रसिद्ध आयुर्वेदीय ग्रन्थों में भी यत्र–तत्र उपलब्ध होता है, जो रोग ऐसे होते हैं, जिसका निदान भी नहीं हो पाता है अथवा कतिपय रोग ऐसे होते हैं, जिनके नाम भी चिकित्सक नहीं जानते हैं। इस कारण से वे रोग असाध्य होते हैं, उनका भी निवारण हवन इत्यादि के द्वारा किया जा सकता है।

अन्यच्च रोगी व्यक्ति में प्राणसञ्चार तथा प्राणघातक व्याधि से मुक्ति हेतु सम्भजनीय यज्ञाग्नि से प्रार्थना की गई है कि वह रोगी को शतायु परिमित जीवन प्रदान कराये।[19] अथर्ववेद में ही अन्यत्र भी अग्नियों से प्रार्थना की गई है कि वह घरों में अपनी चमक से रोगों को प्रकृष्ट रूप से विनष्ट करने के लिए तथा कल्याणकारी प्रवृत्तियों से घरों को सब ओर से रक्षित करें।[20] इसी प्रकार अन्य मन्त्रों में भी रोग–निवारण की बात कही गयी है। ऋग्वेद के मन्त्र में यज्ञाग्नि को 'अमीवचातन' अर्थात् रोगविनाशक विशेषण से सम्बोधित किया गया है।[21] ऋग्वेद में यह भी कहा गया है कि जो व्यक्ति यज्ञाग्नि में विभिन्न प्रकार की औषधियों की समिधाओं का आधान करता है, वह सत्त्व को धारण करता हुआ परिपुष्ट होता है।[22]

छान्दोग्योपनिषद् में उल्लिखित है कि जिस यज्ञ में भेषजगुणों का ज्ञाता अथर्ववेद का पुरोहित ब्रह्मा ऋत्विक होता है, वह भेषजकृत यज्ञ कहा जाता है।[23] इन यज्ञों का वैशिष्टय यह है कि इनमें ''प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा'' आदि दो मन्त्रों में आहुति दी जाती है।[24]

भूमिका भास्कर ग्रन्थ में प्रदूषण से वातावरण को सुरक्षित रखने हेतु कुछ सहायक औषधियाँ (जड़ी–बूटियाँ) भी निर्दिष्ट हैं। तदनुसार सोमलता, गुग्गुल, चिरायता आदि रोगनाशक औषधियाँ अग्नि में भस्म होकर सहस्रगुना शक्तियुक्त होकर जलवायु को शुद्ध करती हैं तथा अपने औषधीय प्रभाव से वातावरण को प्रदूषण रहित करके मनुष्यों के शोभन स्वास्थ्यलाभ में सहायक होती हैं।[25]

वेदों में में जिन रोगनाशक मन्त्रों एवं औषधियों का संकेत किया गया है। इनकी पुष्टि आयुर्वेद से भी होती है। आयुर्वेद में अनेक औषधियों के धूम से नाना प्रकारीय रोगों की चिकित्सा का वर्णन प्राप्त होता है। ''वृहन्निरोग–रत्नाकर'' नामक ग्रन्थ से यह ज्ञात होता है कि अगरु, घनसार, सल्लक, कररुह, नतनीर, चन्दन आदि से युक्त तथा सर्जरस से मिश्रित धूप रोगदाह अर्थात् जलन को नष्ट करता है।[26]

एवमेव अश्वगन्धा, निगुण्डी, बृहती, पिप्लीफल आदि के धुएँ से बवासीर रोग की पीडा शान्त हो जाती है।[27] शय्या में रहने वाले खटमलों, सिर में रहने वाली यूकाओं (जुओं), रोग कीटाणुओं के विनाश के लिए अर्जुन के पुष्पों, बिडङ्गलाङ्गलि की जड़, भल्लातक, उशीर, श्रीवेष्टसर्जक रस, चन्दन चूर्ण कुष्ठ चूर्ण को समान अंशों में लेकर सबका चूर्ण बनाकर इसके धुएँ के प्रयोग का उल्लेख प्राप्त होता है।[28]

इसी प्रकार घृतमिश्रित काकमाचीक फलविशेष के धूम से पिल्लरोग के कीटाणु शीघ्र ही नेत्रों से बाहर गिर जाते हैं।[29] 'बृहन्निरोगरत्नाकर' नामक ग्रन्थ से यह भी ज्ञात होता है कि नीम के पत्ते, वचा, हिङ्गु सर्पिलवण और सर्षप अर्थात् सरसों के बराबर–बराबर मिले हुए घृतयुक्त चूर्ण के धुएँ से घाव के कीटाणु, उसमें होने वाले खुजली तथा पीव आदि भी समाप्त हो जाते हैं।[30]

यज्ञों के द्वारा मनुष्यों को स्वास्थ्य–लाभ होता है यतोहि मन्त्रोच्चारणपूर्वक जब 'स्वाहा' कहते हुए हवि यज्ञाग्नि में डाली जाती है, तब प्रत्येक शब्द का प्रभाव व्यक्ति के हृदय पर पड़ता है। तदनन्तर अग्नि से उठा हुआ हविर्धूम श्वासवायु के साथ रोगी के अन्तःकरण का स्पर्श करता हुआ रोग निवारण में सहायक होता है। यज्ञाग्नि में प्रक्षिप्त घृत, अन्न आदि द्रव्यों का तथा रोगनाशक औषधियों का रोगनिवारक गन्ध वायुमण्डल में फैलकर श्वासक्रिया के माध्यम से नासिका द्वारा वक्षस्थल में प्रवेश करके वहाँ विद्यमान लघुवायु प्रकोष्ठों को शुद्ध करता है और उनमें प्रविष्ट रोगाणुओं को नष्ट भी करता है। इस प्रकार शनैः शनैः व्यक्ति को स्वास्थ्य–लाभ होता है।[31]

ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है कि शरीर में सञ्चरण करने वाले प्राणवायु और अपान–वायु को सम्बोधित करते हुए ऋषि ने ऐसी इच्छा व्यक्त की है कि प्राणवायु पुरूष में बल का आधान करें तथा अपानवायु रक्तविकारों को शरीर से बाहर ले जाये।[32] अन्यत्र ऐसी वायु को सभी व्याधियों को दूर करने वाली औषधियों और इन्द्रियों की पुष्टि के लिए स्वास्थ्यवर्धक दिव्य द्रव्यों का दूत कहा गया है।[33]

अथर्ववेद में ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है कि कच्चे, अच्छे पके हुए अधपके अथवा अधिक पके हुए भोजन में प्रवेश करके हानि करने वाले रोग कृमियों एवं उनकी सन्ततियों को यज्ञाग्नि द्वारा नष्ट करके शरीर को रोगरहित किया जाता है।[34] अथर्ववेद के ही एक मन्त्र में कहा गया है कि यज्ञाग्नि में तीव्र गन्ध वाली समिधा जलाने से मांसभक्षक और रक्त पीने वाले रोग कीटाणु नष्ट हो जाते हैं तथा रोग भी समाप्त हो जाता है।[35] साथ ही यह भी ध्यातव्य है कि बार–बार यज्ञानुष्ठान से वातावरण में ऑक्सीजन अर्थात् प्राणवायु की भी अभिवृद्धि होती है तथा कार्बन–डाइ –ऑक्साइड गैस बहुत कम पैदा होती है।

उपर्युक्त साक्ष्यों के साथ जो चिन्तनपरक विवरण किया गया है, उस पर यदि गहनता से विचार किया जाये तो यह प्रतीत होता है

कि विविधप्रकारीय रोगकीटाणुओं के विनाशपूर्वक तत् तत् रोगों की शान्ति में 'यज्ञ' सफल साधन हो सकते हैं। साथ ही 'यज्ञ' वातावरण को मनुष्यों के स्वास्थ्य के अनुकूलनपूर्वक सुस्वास्थ्य प्रदान करने में सक्षम हैं। अतः वातावरण को स्वच्छ एवं पवित्र बनाये रखने के लिए अनवरत यज्ञीय अनुष्ठान कराना कल्याणकारक होगा। ऐसा मेरा अभिमत है। यही कारण है कि ऋषियों ने यज्ञों को विश्ववारा वैदिक संस्कृति में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। शतपथ ब्रा० में ऋषि कहता है– ''यज्ञो वै श्रेष्ठतमम् कर्म।''[36]

सन्दर्भ

1. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत–हिन्दी कोश, पृ० 489
2. म०भा० शान्तिपर्व– 109.11
3. मनुस्मृति– 6.92
4. कालिदास–कुमारसंभवम्– पञ्चम सर्ग–श्लोक 33
5. तै०ब्रा०– 2.4.7.5 यज्ञः बभूव भुवनस्य गर्भः
6. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत–हिन्दी कोश, पृ० 823
7. निरूक्त– 3.4.19
8. मत्स्यपुराण– 144.44
9. ऐतरेय ब्राह्मण
10. (क) वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यासि। वा०सं० 1, 2
    (ख) यज्ञो वै वसुर्यज्ञस्य पवित्रमसि। शत०ब्रा० 1.7.109
11. वाज०सं०– 1.2 पर दृष्टव्य महीधर भाष्य।
12. वही 1.2
13. विश्वधासि– वही 1.2
14. सा गौर्विश्वस्य जगतः आयुषोदात्री– उव्वटभाष्य, महीधर
15. भैषज्ययज्ञा वा एते यच्चातुर्मास्यानि तस्माद् ऋतुसन्धिषु प्रयुज्यन्ते ऋतुसन्धिषु, वै व्याधिर्जायते।। गोपथ ब्रा०– 1.19
16. वैदिक सम्पत्ति, पृ० 28
17. न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथो अश्नुते। यं भेषजस्य गुग्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते।। अथर्ववेद 19.38
18. अथर्ववेद– 6.85.3
19. आ ते प्राणं सुवामसि परा यक्ष्मं सुवामि ते। आयुर्नो विश्वतो दधयमग्निर्वरेण्यः। अथर्ववेद– 7.53.6
20. वही, 7.84.89
21. कविमग्निमुपस्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे। देवीममीवचातनम्। ऋ० – 1.12.7
22. ऋग्वेद– 3.10.3
23. भेषजकृतो ह वा यज्ञो यत्रैवंविद् ब्रह्मा भवति। छान्दोग्योपनिषद्– 4.17.8
24. यजुर्वेद– 22, 23 से 24 तक
25. भूमिका– भास्कर, पृ० 204
26. अगरूघनसारसल्लककरुरुहनतनीरचन्दनैर्युक्तः सर्जरसेन समेतो धूपो रुग्दाहकं हन्ति।। बृहन्निरोगरत्नाकर
27. अश्वगन्धोऽथ निर्गुण्डी बृहती पिप्पलीफलम्। धूपोऽयं स्पर्शमात्रेण ह्यशसां शमने ह्यलम्।। वही
28. स घा यस्ते ददाशति समिधा जातवेदसे। सो अग्ने धत्ते सूवीर्यं सः पुष्यति।। ऋग्वेद– 3.10.3
29. काकमाचीफलैकेन घृतयुक्तेन बुद्धिमान्। धूपयेत् पिल्लरोगार्तं पतन्ति कृमयोऽचिरात्।। गण०नि०
30. निम्बपत्रवचाहिङ्गू सर्पिलवणसर्षपः। धूपनं कृमिरक्षोद्यनं व्रणकण्डूरूजापहम्।। बृहन्निरोगरत्नाकर
31. यज्ञ मीमांसा, अग्निहोत्र दर्पण, पृ० 18
32. द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः। दक्षं ते अन्य आ वातु परान्यो वातु यद्रपः।। ऋ० 10.137.2 तथा अथर्व० 4.13.2
33. आ वात वाहि भेषजं विवात वाहि य द्रपः त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे।। ऋ० 10.137.2 तथा अथर्व० 4.13.2
34. आमे सुपक्वे शबले विपक्वे यो मा पिशाचो अशने ददम्भ तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदोऽयमस्तु।। अथर्ववेद– 5.29.6
35. एतास्ते अग्ने समिधः पिशाचजम्भनीः। ताष्टाधीरग्ने समिधः ह् गृह्णह्यर्चिषा हि अर्चिषा। जहातु क्रव्याद्रूपे यो अस्य मांसं जिहीर्षति।। अथर्ववेद– 5.29.14–15
36. शतपथ ब्राह्मण– 1.7.3.5